Indian Streams Research Journal
International Recognized Multidisciplinary Research Journal
ISSN No : 2230-7850 Impact Factor : 4.1625 (UIF) [Yr. 2016]

ISRJ Indian Streams Research Journal

हिन्दी साहित्य में संवेदना की उपादेयता

डॉ.हरदीप कौर समरा
ऐसिस्टेंट प्रोफ़ैसर (हिन्दी) , लवली प्रोफ़ैश्नल युनीवर्सिटी, जालन्धर।

प्रस्तावना

संवेदना मनोविज्ञान का शब्द है। अंग्रेज़ी में इसका अर्थ 'सेंसेशन' (Sensation) है, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव। "दि वर्ल्ड डिक्श्नरी' में इसके तीन शब्द दिये गये हैं- सेंस, सेंसेशन और सेंसेबिलिटी"[1] अंग्रेज़ी में संवेदना को 'सिम्पैथी' (sympathy) भी कहते हैं। सेंसेशन शब्द का प्रयोग यद्यपि उत्तेजना के लिये होता है, लेकिन घटना या परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में प्राप्त अनुभूति की अभिव्यक्ति को भी संवेदना कहा जाता है।

साहित्य में इसका अर्थ करुणा, दया, एवं सहानुभूति से लिया जाता है। पीड़ित, संत्रस्त, शोषित मनुष्य जब किसी को अपनी गाथा-गाते व कहते सुनता है तो उसका हृदय भाव-विहवल हो उठता है। हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 में "संवेदना का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में किया गया है अर्थात् वेदना या संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है।"[2] बृहत् हिन्दी कोश में भी संवेदना का अर्थ- अनुभूति, सहानुभूति, संवेदना प्रकट करने की क्रिया या भाव से ही लिया गया है।"[3] "संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया है, जिनमें हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है।"[4] मनोविज्ञान में इसका सीमित अर्थ है। मनोविज्ञान में संवेदना के तीन भेद हैं-1. विशिष्ट संवेदना:- जिसमें प्राण, रस. त्वचा, श्रोत संवेदना आदि आते हैं। इन्हीं संवेदनाओं के द्वारा पदार्थों का ज्ञान होता है। 2. अन्तरावयव संवेदना:- इस श्रेणी में पाचन-क्रिया, रक्त-संचार और श्वास-संचार इत्यादि संवेदनाए आती हैं। जैसे- जलना, आघात, पेट से संबंधित समस्याएँ, भूख, प्यास आदि। 3. स्नायिक संवेदना:- इसमें दृष्टि, ध्वनि, प्राण, स्पर्श, स्वाद, मांस से संबंधित संवेदनाएँ आदि शामिल हैं। साहित्य में संवेदना का प्रयोग स्नायविक संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं से ही लिया जाता है। ये तीनों संवेदनायें मनोविज्ञन में तो पृथक हो सकती हैं, किन्तु जब इन्हें साहित्य में प्रयोग किया जाता है तो ये तीनों एक साथ मिलकर अपना कार्य करती हैं। भावुकता की गहराई के अर्थ में संवेदना को लेना आवश्यक है जिनमें सभ्यता एवं संस्कृति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। संवेदना से बाह्य जगत का ज्ञान होता है।

संवेदनाएँ भी युग-अनुरूप बदलती रहती हैं। समसामयिक समाज में तीन प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं-1. स्वकेन्द्रित (आत्मकेन्द्रित)- ऐसे लोग समाज के प्रचलित मूल्यों तथा व्यवस्थाओं में विश्वास नहीं करते और अपने व्यक्तित्व के विल्गाव से बनी हुई मन की दुनिया में एकांतवास रहते हैं। 2. विद्रोही-समाज को किसी लोकमंगल तक पहुँचाने में कोई योगदान नहीं देते, ये समाज से असन्तुष्ट रहते हैं और अपनी धारणाओं पर अडिग रहते हैं। 3.व्यतिक्रमी (आवारा)- इनके लिये सभी सामाजिक मूल्य एवं मान्याताएँ अवमाननीय और त्याज्य होती हैं।

मानव मन में किसी भी घटना, वस्तु या पदार्थ को देख कर उठने वाले भाव ही संवेदना कहलाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति भिन्न-भिन्न होती है, इसलिये संवेदनाओं में भी अन्तर पाया जाना स्वभाविक ही है। अनुभूति के आधार पर संवेदनाओं के अनेक भेद हैं- 1. रागात्मक संवेदना:- मानव हृदय के राग-विराग, ईर्षा-द्वेष, प्रेम-घृणा, क्रोध-प्रतिहिंसा इत्यादि सब रागात्मक संवेदना के अंग हैं। आगे चलकर इसके भी कई भेद हैं- संयोगात्मक, वियोगात्मक, मूल प्रवृत्तिपरक तथा प्रेमपरक। मूल प्रवृत्तिपरक संवेदना में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहं, भय, घृणा और करुणा शामिल हैं। 2. सुखात्मक संवेदना:- विभिन्न मनोभावों की तृप्ति एवं संतुष्टि सुखात्मक संवेदना है जिसमें सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक और राजनीतिक आदि संवेदना आती हैं। प्रेम, भ्रष्टाचार, बेईमानी, झूठ, फ़रेब, चापलूसी, संघर्ष, सम्बन्ध और सदाचार। 3. दुखात्मक संवेदना:- इस कोटि में विघटन, घुटन, त्रासदी, स्वार्थ, शंका, सन्देह, ईर्ष्या, रूढ़ियाँ, प्रेम, प्रार्थना आदि आते हैं।

संवेदनाएँ कैसी भी हों, चाहे व्यक्तिगत या समष्टिगत, उन पर सामाजिक प्राप्त मान्याताओं, विचारधाराओं तथा परंपराओं का विशेष योगदान रहता है। किसी समाज की संस्कृति का अनुमान वहाँ की संवेदनाओं से लगाया जा सकता है। संवेदना के निर्माण में अभिव्यक्ति को दो रूपों में लिया जा सकता है- एक तो जब विशिष्ट विचार समाज द्वारा स्वीकृति पाकर सामाजिक संवेदना का रूप धारण कर लेता है और साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति होने लगती है। दूसरी ओर जब कोई विचार, भाव या धारणा साहित्य के माध्यम से समाज में प्रवेश करे और संवेदना की सत्ता को ग्रहण कर ले तब संवेदनाओं को अभिव्यक्ति का आकार मिलता है।

सभी प्रकार की संवेदनाओं का संबंध मानव के विवेक से होता है, वही उसे अच्छे और बुरे में अन्तर की परख करवाती है। जब कोई भाव या विचार अथवा धारणा अनुभव के स्तर पर उतर आती है तो साहित्यकार उस पर लिखे बिना नहीं रह सकता। एक साहित्याकार का दृष्टिकोण दूसरे साहित्यकार के दृष्टिकोण से भिन्न होता है क्योंकि उसका अपना चिन्तन, चेतना और दृष्टि होती है। साहित्य में संवेदना को दो रूपों से देखा जा सकता है। पहला शब्द के रूप में और दूसरा भाषा के रूप में। साहित्य का मूल संबंध मानव की संवेदना से है। संवेदना के बिना सहित्य नहीं बनता, फिर भले ही उसमें बुद्धि का कितना ही समावेश क्यों न हो। "बुद्धि, दर्शन, चिन्तन, ज्ञान, विज्ञान को जीवन में आत्मसात् करना पड़ता है। जब वह आत्मसात् होकर मानव संवेदना का अंग बनता है तभी शक्तिशाली साहित्य की रचना होती है।"[5] नयी अनुभूति, नयी भाषिक अर्थवत्ता, अनुभवों का नया संयोजन तथा मानव संबंधों के परिवर्तन की सूक्ष्म परख आदि से ही साहित्य की रचना होती है। भाषा, भाव और प्रेरणा तीनों ही संवेदना को बल प्रदान करते हैं। आज के मानव का मानसिक सन्त्रास, संबधों में टूटन, कुन्ठा, अजनबीपन, विध्वंस, विघटन, अशान्ति और उद्वेलन की वेदना सहित्यकारों ने अनुभव की है। साहित्य की दो विधाएँ हैं-गद्य और पद्य। पद्य में रागात्मकता की प्रधानता होती है, जबकि गद्य में रागात्मकता संवेदना से इतर संवेदना का स्वरूप ग्रहण करती है।

प्रसाद की कहानियों की मूल संवेदना रोमेंटिक आदर्शवाद रही है। प्रेमचन्द के साहित्य 'कफ़न', 'पूस की रात', 'दूध का दाम', 'सद्गति' और 'बूढ़ी काकी' में सामाजिक याथार्थ की संवेदना प्रखर रही है। जैनेन्द्र की कहानियों में तो संवेदना यथार्थ की सीमाओं से आगे निकल गई है। नई कहानी की संवेदना परम्परागत मूल्यों के विघटन, स्त्री-पुरुष संबंधों के नये रूपों, वर्जनाओं से भरी हुई नारी, संकट में घिरे मनुष्य और जीवन के यथार्थ का चित्रण किया गया है. नई कहानियों में विष्णु प्रभाकर की कहानी 'धरती अब भी घूम रही है', धर्मवीर भारती की 'गुल की बन्नो', भीष्म साहनी की 'चीफ़ की दावत', कमलेश्वर की 'नीली झील', फणीश्वरनाथ रेणु की 'लाल पान की बेगम', 'तीसरी कसम', मार्कण्डेय की 'महुए का पेड़', 'भूदान', हंसा जाई अकेला', 'माही', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे', उषा प्रियाम्वदा की 'वापसी' आदि ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें संवेदना अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँच गई है।

सन् साठ के बाद जीवन में परिवर्तन आता गया। स्वतन्त्रता और राजसत्ता के प्रति मोह भंग होने लगा। साधनों का अभाव बढ़ गया। कहानीकारों ने नया-बोध, नई सैन्दर्य चेतना, नव संवेदना को अपनाया। यही संवेदना समकालीन कहानी कहलाई। हिन्दी कहानी विकास के विभिन्न पड़ाव पार करती हुई एक ओर तो मानवतावादी परम्परा से जुड़ी रही तो दूसरी ओर यथार्थ का रूप धारण किए हुये आधुनिक भाव-बोध की सम्वाहक बनी।

20वीं शताब्दी के दशक में आज का गरीब और गरीब, अमीर और अमीर होता जा रहा है। औद्योगिकीकरण, उपभोक्तावाद, पूँजीवाद और बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों के कारण भारत की अशिक्षित जनता में बेरोजगारी, भुखमरी बढ़ गई है। स्त्री विमर्श और दलित लेखन ने साहित्य की दो नवीन धाराओं को जन्म दिया है। अन्तिम दशक में कहानीकार भूमण्डलीकरण तथा औरत उत्तर कथा की चकाचौंध में फँसकर अश्लीलता और सिनेमाई सहित्य का सृजन करने लगे। उदय प्रकाश द्वारा रचित 'पीली छतरी वाली लड़की', रमाकान्त श्रीवास्तव कृत 'शताब्दी प्रवेश' और आविद सुरती का 'कोरा कैनवास' इसी कोटि की रचनाएँ हैं। आज करुणा का स्थान घृणा और वितृष्णा ने ले लिया है। इस श्रेणी में 'दोपहर का भोजन', ज़िन्दगी और जोंक', 'तिरवेनी की तड़बना', 'सिरी उपमा जोग', 'छप्पन तोले का करधन', 'कामरेड का कोट' आदि कहानियाँ आती हैं।

डॉ.रामदरश मिश्र कहते हैं- "संवेदनाओं के कारन ही हम समय की दूरियाँ पार कर आदिकाल के कवियों की कविताओं का आस्वाद ले रहे हैं, मध्याकालीन कविताओं में तल्लीन हो जाते हैं। सुख-दुख, राग-विराग, सौन्दर्य-असौन्दर्य की संवेदना प्राचीन और चिर नवीन है। इन संवेदनाओं को जागृत रखने वाले उपादान बदलते रहते हैं और सामाजिक जतिलता के अनुरूप संवेदनाओं में जटिलता आती रहती है। एक दूसरे में संक्रमण होता रहता है। आज की संवेदनाएँ उलझी हुई हैं, क्योंकि सामाजिक संबंध उलझे हुये हैं, मूल्ये उलझे हुये हैं। इन संवेदनाओं को उनकी समस्त गहनता, सच्चाई और तीव्रता में पकड़ कर उन्हें चित्रित करना सर्जक का मूल धर्म है। इसी से कृति में शक्ति और मर्मस्पर्शिता आती है।"[6]

कमलेश्वर(बयान, राजा निरवंसिया, तलाश), निर्मल वर्मा, अमरकान्त की कहानियों में नगरीय जीवन में पाई जाने वाली सहानुभूति, अलगाव, जीवन की कृत्रिमता, प्रतिस्पर्द्धा, भाग-दौड़, आपा-धापी, ईर्ष्या विद्यमान है। मोहन राकेश(अपरिचित, मिस्स पाल), राजेन्द्र यादव (टूटना), कम्लेश्वर की कहनियों में तनाव और रिक्तता की अनुभूति होती है। मन्नु भंडारी की कहनियों में 'मैं हार गई', त्रिशन्कु, तीन निगाहों की तस्वीर, यही सच है, उषा प्रियांवदा (छुट्टी का एक दिन), मन्नु भंडारी, कृष्णा सोबती, शिवानी, रजनी पनिकर और मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानियों में स्त्री-पुरुष के आपसी संबन्धों और पति-पतनी के तनाव को आधार बनाया गया है।

हमारे देश का इतिहास विश्व की अनेक सभ्यताओं एवं संस्कृतियों से प्रभावित हुआ है। अंग्रेज़ी सभ्यता एवं संस्कृति के फलस्वरूप लोगो में नई चेतना, जागृति आई, जिसने हमारी जीवनशैली को ही बदल के रख दिया। शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ, नये विचार, नया जीवन दर्शन, नये नैतिक मूल्य और नया सौन्दर्य-बोध आया। भारत-पाकिस्तान के विभाजन के कारण देश में निराशा, दुख, क्षोभ, चिन्ता, संघर्ष और कष्ट फैल गया। आम जनता ने जो सपने देखे थे वो पूरे न हो पाये। फलतः राष्ट्रहित को त्याग कर कुव्यवस्था, वर्ग भेद, छुआ-छूत, दहेज, तलाक, अन्धेरगर्दी, असन्तोष, मूल्यों का ह्रास, असामानता, भ्रष्टाचार ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया। आज का मानव अपने हित भूल कर अधिक से अधिक सुविधायें पाने की होड़ में लग गया है। आशाएँ पूर्ण न होने पर बेचैनी और अलगाव उत्पन्न हो गया है।

आधुनिक पदार्थवादी व्यक्ति समस्याओं से जूझता हुआ भीतर से बिखरता जा रहा है। संभवतः सहित्यकार के मस्तिष्क में नई चेतना का उद्भव हुआ। सहित्यकार की आस्था शाश्वत मूल्यों में तो रहती ही है, किन्तु वह सामयिक मूल्यों के प्रति भी सजग रहता है। आधुनिक सहित्य की संवेदना या बोध में गहरा परिवर्तन आ गया है जो सहित्य के सभी रूपों और दिशाओं में परिलक्षित होता है। बोध के इस नवीन परिवर्तन को आधुनिक युग का भावबोध कहा जाता है। साहित्य के प्रति जनता के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया है। साहित्य में वस्तु, पात्र, शैली, उद्देश्य सब बदल गये हैं। साहित्य जनता के अधिक निकट आ गया है और सामान्य जीवन के लिये ग्राह्य बन गया है। साधारण जनता को आलम्बन बनाकर पात्रों का चरित्र-चित्रण किया जाने लगा है। संवेदना का युगानुरूप निरंतर परिवर्तन होता रहता है। सती-प्रथा, बाल-विवाह, कन्या-वध, विधवा-विवाह जैसी सामाजिक बुराईयों के संदर्भ में आर्य-समाज जैसी अनेक संस्थाओं ने नई चेतना लाने के सफल प्रयास किये।

भारतेन्दु युग में मुसलमानों और हिन्दुओं में एकता स्थापित करने के प्रयास भी किये गये और राष्ट्रीयता का स्वर भरने का कार्य किया गया। द्विवेदी युग में -"राष्ट्रीय कविता अतीत के वर्तमान, कल्पना से यथार्थ, उपदेश से कर्म, पर प्रार्थना से स्वावलम्बन, निराशा और अविश्वास से आशा-विश्वास-

दीनतापूर्ण नम्रता से क्रान्तिपूर्ण उदगार की ओर अग्रसर होती गई।"[7] सामाजिक चेतना का प्रभाव तत्कालीन सहित्य पर भी पड़ा। साधारण मजदूर वर्ग की समस्याओं को भी साहित्य में स्थान दिया जाने लगा। "छायावाद में आकर संवेदना ने नया मोड़ ले लिया। समाज में प्रचलित समस्याओं एवं आदर्शों की बौद्धिक आलोचना होने लगी। छायावादी युग में जिस वैयक्तिकता का उदय हुआ उससे साहित्य में अनुभूति की अभिव्यक्तिकता को प्रमुखता मिली।"[8]

सदियों से चली आ रही परंपरा को तोड़ती हुई नारी जो रीतिकाल में मात्र भोग का साधन समझी जाती थी, छायावादी युग में संवेदना का स्पर्श पा पवित्र हो उठी। आधुनिक वैज्ञानिक सांस्कृतिक चेतना एक नये मोड़ पर आ पहुँची। हिन्दी के नये लेखकों ने जागरुक होकर जीवन के सभी स्तरों की अनुभूतियों को साहित्य का वर्ण्य-विषय बनाया। जिन समस्याओं व कुरीतियों का प्रेमचन्द ने विरोध किया था, नये युग में उन सामाजिक समस्याओं ने मनोवैज्ञानिक रूप ले लिया। आज का साहित्य यथार्थ को अनदेखा नहीं करता वरन् मानवीय अन्तर में बसे व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है। आज का साहित्य पलायन या मुक्ति नहीं, बल्कि संघर्ष चाहता है। अब साहित्य में अकेला और सन्त्रास व्यक्ति सामने आया है जिसका वर्णन अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र ने किया है। महीप सिंह, दिनेश पालीवाल, राजकुमार भ्रमर, नरेन्द्र कोहली, गोविन्द मिश्र, श्रद्धा कुमार, ममता कालिया, निरुपमा सेवती और दीप्ति खण्डेलवाल आदि की कहानियों में नगरीय बोध के दुष्परिणामों की झलक भली-भांति देखाई देती है।

आज का साहित्य खोखले मूल्यों के प्रति अनास्थावान हो गया है, उसमें अविश्वास, असन्तोष, विघटन और सन्त्रास आ गया है। आधुनिक समाज आधारभूत प्रश्नों को वास्तविक धरातल और चिन्तन पर ले आया है। आज विलम्बित विवाह, गर्भपात, गर्भ निरोधक, प्रजनन प्रक्रिया, अन्तर्जातीय और अन्तरष्ट्रीय विवाह, रोमांस, काम और यौन तृप्ति संबंधी बातों की चर्चा खुल कर की जाने लगी है। प्रेम और सेक्स में स्वेच्छा को बुरा नहीं समझा जाता। एक पति या पत्नी एकाचार की भावना से लोग ऊबने लगे हैं। यह वाकई में एक नई संवेदना है जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य निःसंकोच कर रहा है।

एक साहित्यकार व्यक्तिगत या समष्टिगत संवेदना को ही वाणी का जामा पहनाता है। समाज में जो भी परिवर्तन आते हैं उनका लेखक पर गहरा प्रभाव पड़ता है। समाज में व्याप्त जातिवाद, धार्मिक कट्टरता, सामाजिक समस्याएँ, पारिवारिक संबंधों में आई शिथिलता आदि का चित्रण लेखक ही साहित्य में करता है। साहित्यकार अधिक संवेदनशील होता है, इसीलिये उसके सहित्य में गतिशीलता होती है। धर्म, जाति, समाज और संस्कृति के लिये वह उत्तरादायी होता है। वह समाज में जो देखता है, अनुभव करता है उसको अपने लेखन का आधार बनाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संवेदना और शिल्प: अर्थ और परिभाषा, डॉ. नीरज शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.30
2. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, पृ.863
3. बृहत हिन्दी कोश, संपादक-कालिका प्रसाद, वाराणसी ज्ञानमण्डल, संस्करण संवत् 2030, पृ.1175
4. संवेदना और शिल्प: अर्थ और परिभाषा, डॉ. नीरज शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.29
5. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मनवीय संवेदन, डॉ. उषा यादव, पृ.17
6. संवेदना और शिल्प: अर्थ और परिभाषा, डॉ. नीरज शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.36
7. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, डॉ. उदयभानु सिंह, संस्करण प्रथम, पृ.302
8. हिन्दी उपन्यासों की युग चेतना और पाठकीय संवेदना, डॉ. मुकुन्द द्विवेदी, संस्करण-1970, पृ.09

डॉ.हरदीप कौर समरा
ऐसिस्टेंट प्रोफ़ैसर (हिन्दी) , लवली प्रोफ़ैश्नल युनीवर्सिटी, जालन्धर।